

देना बैंक

बनाम

भीखाभाई प्रभुदास पारेख एण्ड कम्पनी व अन्य

25 अप्रैल, 2000

[एस. राजेन्द्र बाबू तथा आर. सी. लाहोटी, जेजे.]

कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957— धारा 13 और 15— बिक्री कर का बकाया—प्रतिवादी फर्म के भागीदारों द्वारा अपीलकर्ता को दिए गए दूसरे ऋण की अनदेखी करते हुए सम्पत्ति के बंधक के माध्यम से वसूली— विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को डिक्री का हकदार पाया लेकिन तकनीकी आधार पर मुकदमा खारिज कर दिया— उच्च न्यायालय से यह माना कि राज्य के पास बिक्री कर के बकाए की वसूली के लिए अधिमान्य दावा है— अपील में अभिनिर्धारित, राज्य के पास अपनी बकाया वसूल करने के लिए अधिमान्य अधिकार होगा।

कर्नाटक भू राजस्व अधिनियम, 1964 धारा 158(1)— अध्याय XVI के तहत वसूली योग्य किसी भी धनराशि पर राज्य सरकार के दावे को किसी भी अन्य ऋण, माँग या दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी, जिसमें बंधक भी शामिल है— राज्य की प्राथमिकता के सिद्धान्त को दी गई वैधानिक मान्यता, बंधक, निर्णय डिक्री, निष्पादन या कुर्की आदि के विषय बनाने वाले निजी ऋणों पर प्रयोज्यता का विस्तार करती है— धारा 190—

बिक्री कर बकाया की वसूली के लिए लागू भू राजस्व की वसूली की प्रक्रिया
—कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957— धारा 13 और 15।

कानूनों की व्याख्या पूर्वव्यापी— कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम,
1957— धारा 15(2-ए) अन्तःस्थापित की गई 18.11.1983— कर और
जुर्माने के लिए फर्म के भागीदारों को अलग-अलग और संयुक्त रूप से
उत्तरदायी बनाया गया— विधायी अधिनियम केवल इसके अधिनियमन पर
ही लागू होता है, पूर्वव्यापीता का अनुमान तब तक नहीं लगाना चाहिए जब
तक कि स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से निहित ना हो— फर्म के खिलाफ
मूल्यांकन किए गए कर का भुगतान करने के लिए भागीदारों के दायित्वों
का निर्धारण करना उन्हें व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाना संशोधन को
पूर्वव्यापी प्रभाव देने के समान नहीं है।

साझेदारी अधिनियम, 1932— धारा 25— एक फर्म एक कानूनी
इकाई नहीं है, यह सभी भागीदारों के लिए केवल एक सामूहिक या संक्षिप्त
नाम है— यह सिद्धान्त की फर्म के सभी कार्यों के लिए भागीदार संयुक्त रूप
से और अलग-अलग उत्तरदायी हैं, उन स्थितियों तक विस्तारित नहीं किया
जा सकता, जिसमें फर्म को एक व्यक्ति माना जाता है और इसलिए कुछ
उद्देश्यों के लिए एक कानूनी इकाई माना जाता है।

"डेटर डिग्निओरी" का सिद्धान्त नियम—की प्रयोज्यता।

विधिक सूत्र:

न्याय और शासन दोनों एक साथ होते हैं— की प्रयोज्यता।

अपीलकर्ता बैंक ने प्रत्यर्थी फर्म और उसके भागीदारों के खिलाफ बंधक प्रतिभूति पर वसूली का मुकदमा दायर किया था। मुकदमे के लम्बित रहने के दौरान कर्नाटक राज्य ने बिक्री कर के बकाया की वसूली के लिए गिरवी रखी गई सम्पत्ति को कुर्क और नीलाम कर दिया। राज्य को एक पक्ष के रूप में शामिल किया गया था क्योंकि उक्त सम्पत्तियों को उसके द्वारा खरीदा गया था। विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को डिक्री का हकदार पाया लेकिन तकनीकी आधार पर दावा खारिज कर दिया। उच्च न्यायालय में अपील लम्बित रहने के दौरान पक्षकारों के मध्य एक समझौता किया गया था, जिसमें कर्नाटक राज्य पक्षकार नहीं था। समझौते के खण्ड (7) और (8) के तहत प्रत्यर्थियों को बाद की सम्पत्तियों को विक्रय करने के लिए और आय को अपीलार्थी को जमा के लिए स्वतंत्र किया गया था। उच्च न्यायालय ने इन खण्डों को यह मानते हुए खारिज कर दिया कि राज्य के पास मुकदमे की सम्पत्तियों की बिक्री से बिक्री कर की वसूली करने का अधिमान्य दावा है। इसलिए यह अपील की गई है।

अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया है कि राज्य उसके सुरक्षित हितों को प्राथमिकता नहीं दे सकता; कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम और कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम के तहत फर्म के विरुद्ध निर्धारित बिक्री कर की बकाया राशि की वसूली के लिए भागीदारों की

सम्पत्ति को कुर्क नहीं किया जा सकता है, बिक्री कर का बकाया भू राजस्व का बकाया नहीं बनता है और केवल भू राजस्व का बकाया वसूली योग्य होता है।

न्यायालय द्वारा अपील को खारिज करते हुए, अभिनिर्धारित किया गया :-

1.1 सम्पत्ति के सम्बंध में क्राउन के सामान्य अधिकारों को आम कानून के तहत प्राथमिकता दी जाती है। जहाँ क्राउन का अधिकार और विषय का अधिकार एक ही समय में मिलते हैं, वहाँ क्राउन के अधिकार को प्राथमिकता दी जाती है, नियम डेटुर डिग्निओरी है। सरकारी ऋणों की प्राथमिकता का सिद्धान्त आवश्यकता और सार्वजनिक नीति के नियम पर आधारित है। राज्य ऋणों की प्राथमिकता के दावों का मूल औचित्य इस सिद्धान्त पर आधारित है कि राज्य कराधान द्वारा धन जुटाने का हकदार है क्योंकि जब तक राज्य को पर्याप्त राजस्व प्राप्त नहीं होगा, वह एक सम्प्रभु सरकार के रूप में कार्य करने में सक्षम नहीं होगा। इसके पास आवश्यक धन राशि होनी चाहिए और यह विचार राज्य को अपने कर बकाया के सम्बंध में सम्पत्ति का दावा करने के अधिकार को स्वीकार करने की आवश्यकता और बुद्धिमत्ता पर जोर देता है, राज्य निजी ऋणों पर प्राथमिकता का दावा कर सकता है और सामान्य कानून का नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 372(1) के अर्थ के अन्तर्गत प्रासंगिक समय में

ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में लागू कानून के समान हैं और इसके बाद भी लागू है। जिस सिद्धान्त पर यह नियम स्थापित किया गया है, उस पर प्राथमिकता केवल ऐसे ऋणों के लिए उपलब्ध होगी, जैसा कि अनिवार्य वसूली की राज्य की सम्प्रभु शक्ति के संदर्भ में क्राउन के विषयों द्वारा किया जाता है और वाणिज्यिक सेवाओं के लिए शुल्क या वाणिज्यिक लेन-देन के अनुसार राज्य के विषयों द्वारा किए गए दायित्व तक विस्तारित नहीं होगा।

[517-F-H; 518-A-B]

1.2 अन्य लेनदानों की तुलना में ऋण की वसूली का क्राउन का अधिमान्य अधिकार सामान्य या असुरक्षित लेनदानों तक ही सीमित है। इंग्लैण्ड का सामान्य कानून या समानता और सद्भावना (जैसा कि भारत पर लागू होता है) के सिद्धान्त क्राउन को अपने ऋणों की वसूली के लिए किसी बंधक या माल के बिक्रीदार या किसी सुरक्षित लेनदार पर अधिमान्य अधिकार नहीं देते हैं। केवल ऐसे मामलों में जहाँ क्राउन के अधिकार और विषय के अधिकार एक ही समय में मिलते हैं, वहाँ क्राउन को सामान्य रूप से प्राथमिकता दी जाती है। जहाँ राजा का अधिकार शुरू होने के पहले विषय का अधिकार पूर्ण और परिपूर्ण है, वहाँ नियम लागू नहीं होता है।

[518-H; 519-A-B]

एम/एस. बिल्डर्स सप्लाइ कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, एआईआर (1965) एससी 1061, अनुसरण किया गया।

बैंक ऑफ बिहार बनाम बिहार राज्य व अन्य, एआईआर (1971) एससी 1210 तथा औरंगाबाद जिलाधीश बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, एआईआर (1967) एससी 1831, पर भरोसा।

बैंक ऑफ इण्डिया बनाम जोन भोमान, एआईआर (1955) बोम्बे 305; मनिकम चेट्टियार बनाम आयकर अधिकारी, मदुरा (1938) एमएडी. 360; पिपल्स बैंक ऑफ नॉर्थन इण्डिया लि. बनाम सचिव, भारत राज्य एआईआर (1935) सिण्ड 232 तथा वसनभाई टोपनदास बनाम राधाबाई तीरथदास व अन्य; एआईआर (1933) सिण्ड 368, स्वीकृत।

जाइल्स बनाम ग़ोवर, 1832 131 ईआर 563, संदर्भित।

इंग्लैण्ड का कानून, चौथा संस्करण खण्ड 8 पैरा 1076 हर्बर्ट ब्राउन : कानूनी कहावत दसवाँ संस्करण, पीपी. 35-36; रासबिहारी घोष; गिरवी का कानून (टी.एल.एल. साँतवा संस्करण) पे. 386, संदर्भित।

2. भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 की धारा 158(1) विशेष रूप से यह प्रावधान करती है कि अध्याय XVI के तहत वसूली योग्य किसी भी धनराशि पर राज्य सरकार के दावे को बंधक के सम्बंध में किसी भी अन्य ऋण, माँग या दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी। यह ना केवल ऋणों की वसूली के लिए राज्य की प्राथमिकता के सिद्धान्त को वैधानिक मान्यता देता है बल्कि बंधक, निर्णय-डिक्री, निष्पादन एवं कुर्की और इसी तरह के निजी ऋणों पर भी इसकी प्रयोज्यता का विस्तार करता है। भू राजस्व

अधिनियम की धारा 190 का प्रभाव भू राजस्व के बकाया के वसूली की प्रक्रिया को बिक्री कर की वसूली के लिए लागू करना है।

एम/एस. बिल्डर्स सप्लाइ कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, एआईआर (1965) एससी 1061, अनुसरण किया गया।

औरंगाबाद जिलाधीश बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, एआईआर (1967) एससी 1831, पर भरोसा किया।

3. 18.11.83 से कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की धारा 15-ए में उपधारा 2-ए को जोड़ा गया था, जो किसी फर्म के भागीदारों को उनकी फर्म के सम्बंध में किसी भी तरह के कर या जुर्माने के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी बनाता था। एक कानून उसके अधिनियमित होने की तारीख से पिछली तारीख से शुरू होने के लिए बनाया जा सकता है। एक विधायिका किसी विषय पर पिछली अवधि को नियंत्रित करने का कानून बनाने में सक्षम है और यह पूर्वव्यापीता है। सामान्यतः कोई विधायी अधिनियम इसके अधिनियमित होने पर ही लागू होता है। पूर्वव्यापीता का तब तक अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए, जब तक यह स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से कानून में निहित ना हो, विशेष रूप से जो मूल अधिकारों और दायित्व से सम्बंधित हो। यह कहना गलत है कि धारा 15(2-ए) का पूर्वव्यापी संचालन है। फर्म के खिलाफ निर्धारित कर का भुगतान करने के लिए भागीदारों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी

बनाकर उनके दायित्वों का निर्धारण करना संशोधन को पूर्वव्यापी संचालन देने के समान नहीं है। संशोधन सम्भावित है और भले ही ऐसा ना हो लेकिन मौजूदा मामले के तथ्यों के लिए इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह द्वारा वैधानिक व्याख्या का सिद्धान्त, साँतवा संस्करण, 1999 पेज 369, संदर्भित।

4. साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 25 में प्रावधान है कि प्रत्येक भागीदार अन्य सभी भागीदारों के साथ संयुक्त रूप से और एक भागीदार होने के दौरान किए गए फर्म के सभी कार्यों के लिए भी अलग-अलग उत्तरदायी है। एक फर्म एक कानूनी इकाई नहीं है यह सभी भागीदारों के लिए एक सामूहिक या सारगर्भित नाम है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म का अपने भागीदारों से दूर कोई अस्तित्व नहीं है। फर्म के नाम पर किसी फर्म के पक्ष या विपक्ष में एक डिक्री का वही प्रभाव होता है, जो भागीदारों के पक्ष या विपक्ष में डिक्री का होता है। जब फर्म एक दायित्व वहन कर रही है, यह माना जा सकता है कि सभी भागीदार उस दायित्व को वहन कर रहे थे और इसलिए भागीदार फर्म के सभी कार्यों के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी रहते हैं। इस सिद्धान्त को ऐसीस्थितियों तक विस्तारित और विस्तारित नहीं किया जा सकता, जिसमें फर्म को एक व्यक्ति और कुछ उद्देश्य के लिए एक कानूनी इकाई माना जाता है। इस

आशय का वैधानिक प्रावधान होने पर यह सिद्धान्त और मजबूत हो जाता है।

बिक्री कर आयुक्त, एम.पी. व अन्य बनाम राधाकृष्णन व अन्य, एआईआर (1979) एससी 1588, अनुसरण किया गया।

तृतीय आयकर अधिकारी व अन्य बनाम अरूणगिरी चेट्टियार, (1996) 220 आईटीआर 232 एससी, पर भरोसा किया।

5. कर्नाटक राज्य जिस दिन गिरवी रखी सम्पत्ति को कुर्क करने और बेचने के लिए आगे बढ़ा, उस दिन बैंक प्रतिभूति को मात देकर बिक्री आय को बिक्री कर बकाया में विनियोजित नहीं कर सकता था। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अभी भी अपीलकर्ता को कोई अनुतोष नहीं दिया जा सकता। धारा 15-(2-ए) अपीलकर्ता के पक्ष में डिक्री पारित करने से पहले ही लागू हो गई थी, जिसे निष्पादित किया जाना बाकी है और दावा अभी भी बकाया है। यहाँ तक की यदि बिक्री को रद्द भी कर दिया जाए, तो यह केवल बिक्री कर के बकाया को पुनर्जिवित करेगा, जिसमें आगे ब्याज और जुर्माना जोड़ना होगा। राज्य को अपीलकर्ता बैंक के अधिकारों पर अपने बकाया की वसूली करने का अधिमान्य अधिकार होगा और भागीदारों की सम्पत्ति पर भी कार्यवाही की जाएगी।

बिक्री कर आयुक्त, एम.पी. बनाम राधा कृष्णन व अन्य, एआईआर (1979) एससी 1588, अनुसरण किया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : दीवानी अपील संख्या 2853/ 1993

कर्नाटक उच्च न्यायालय, के आर.एफ.ए. संख्या 152/1984 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.7.92 तथा 3.8.92 से।

विनोद ए. बोबडे, योगेश कु. जैन, आर.सी. पाठक, अरूण अग्रवाल एवं श्रीमती बोबिन अख्तर अपीलकर्ता की ओर से।

श्रीपाल सिंह उत्तरदाता की ओर से ।

न्यायालय का निर्णय न्यायालय आर.सी. लाहोटी, जे. द्वारा पारित किया गया :-

देना बैंक, जो हमारे समक्ष अपीलकर्ता है, (इसके बाद संक्षिप्त में बैंक) ने 12.4.1972 को मैसर्स भीखाभाई प्रभुदास पारेख एवं कम्पनी तथा उसके भागीदारों के विरुद्ध 19,27,142.29 पैसे के साथ भविष्य के ब्याज और लागत की वसूली के लिए मुकदमा दायर किया। यह मुकदमा *अन्य बातों के साथ-साथ* साझेदारी फर्म और उसके भागीदारों द्वारा 24.4.1969 को किए गए स्वामित्व विलेखों को जमा करके बंधक रखने पर आधारित था। दावे में बंधक प्रतिभूति को लागू करने की माँग की गई थी। मुकदमें के लम्बित रहने के दौरान कुछ प्रतिवादियों की मृत्यु हो गई और उनके कानूनी प्रतिनिधियों को रिकॉर्ड पर लाया गया। बंधक सम्पत्ति के तीन किराएदार भी मुकदमें में पक्षकार के रूप में शामिल किए गए थे ताकि बैंक

के पक्ष में सम्पत्ति के न्यायसंगत बंधक द्वारा बनाए गए आरोप के प्रवर्तनमें उनके द्वारा कोई बाधा उत्पन्न करने की सम्भावना को समाप्त किया जासके। मुकदमे के लम्बित रहने के दौरान कर्नाटक राज्य ने पहले प्रतिवादी, साझेदारी फर्म द्वारा देय बकाया बिक्री कर की वसूली के लिए गिरवी रखी सम्पत्ति को कुर्क करने और बेचने की कोशिशकी। राज्य अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारण वर्ष 1957-58 एवं 1966-67 से 1969-70 तथा केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारण वर्ष 1958-59 से 1964-65 तथा 1967-68 से 1969-70 तक सम्बंधित बिक्री कर का बकाया। ऐसा प्रतीत होता है कि एक अदालत रीसिवर नियुक्त किया गया था, जिसने आपत्तियों को प्राथमिकता देकर बंधक सम्पत्तियों को कुर्क करने और बेचने के राज्य के प्रयास का विरोध करनेकी कोशिश की लेकिन वह असफल रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि (जैसा कि विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पैरा 4 में कहा है) कि कर्नाटक राज्य ने स्वयं 30.4.1976 को आयोजित नीलामी में सम्पत्ति खरीदी थी बैंक द्वारा की गई प्रार्थना पर कर्नाटक राज्य को मुकदमें में प्रतिवादी के रूप में शामिल किया गया था। विचारण न्यायालय ने यह पाया कि मुकदमे में सभी तथ्य सिद्ध हैं और बैंक डिक्री का हकदार है। बाद सम्पत्तियों को गिरवी रख कर बनाए गए आरोप को भी सिद्ध माना गया। विचारण न्यायालय ने यह भी माना कि राज्य फर्म के खिलाफ बिक्री कर बकाया की वसूली के लिए भागीदारों की सम्पत्ति को कुर्क और बेच नहीं सकता था।

हालाँकि, मुकदमें को खारिज करने का निर्देश दिया गया क्योंकि निचली अदालत कीराय में बैंक के मुख्य प्रबंधक और मुख्तारआम श्री आर.के. मेहता को वाद-पत्र पर हस्ताक्षर करने और सत्यापित करने तथावाद प्रस्तुत करने के लिए विधिवत् अधिकृत व्यक्ति साबित नहीं किया गया था।

बैंक ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की। उच्च न्यायालय ने श्री आर.के. मेहता को वाद-पत्र पर हस्ताक्षर करने और सत्यापित करने और प्रस्तुत करने के लिए विधिवत् रूप से अधिकृत व्यक्ति माना था। अपील की सुनवाई के दौरान 27.1.1992 को बैंक और उधारकर्ताओ(फर्म और उसके भागीदार) के बीच एक समझौता किया गया था। बैंक और उधारकर्ताओ के बीच हुए समझौते के अनुसार डिक्रीटल राशि के भुगतान का एक तरीका प्रदान किया गया, जिस पर दोनों की सहमति हुई थी। समझौता विलेख के खण्ड (7) और (8) में निम्न प्रावधान किए गए हैं:-

"(7) प्रतिवादी-उत्तरदाता नम्बर 1-4, 6, 8-12, 14 और 15 वाद-पत्र अनुसूची सम्पत्ति को डिक्री की तारीख से 2 वर्ष के अन्दर या तो हिस्सों में या एक लोट में बेचने के लिए स्वतंत्र है। वादी-अपीलकर्ता ऐसी बिक्री या डिक्री में प्रतिवादियों-उत्तरदाताओ के साथ सहयोग करेगा और कीमत (बिक्री आय) प्रतिवादियों-उत्तरदाताओ द्वारा वादी-अपीलार्थी बैंक के खाते में जमा की जाएगी और वादी-अपीलार्थी इसके

बाद अपनी सहमति देगा और ऐसीबिक्री या बिक्री पर कोई आपत्ति नहीं करेगा।

"(8) वादी-अपीलार्थी अपील ज्ञापन में अदा की गई न्याय शुल्क की वापसी का हकदार होगा और माननीय न्यायालय द्वारा उचित निर्देश जारी किया जा सकता है।"

चूँकि कर्नाटक राज्य समझौते में पक्षकार नहीं था इसलिए जहाँ तक राज्य के अधिकारों का सवाल है, बैंक की ओर से, साथ ही उधारकर्ताओं की ओर से, जिन्होंने बैंक का समर्थन किया था, पर निर्णय लिया जाना था। इस सम्बंध में दो दलीलें उठाई गईं, सबसे पहले यह कि कहा गया कि कर के बकाए की वसूली के लिए राज्य के अधिकार को बैंक के अपनी प्रतिभूति लागू करने के अधिकार पर प्राथमिकता नहीं दी जा सकती, क्योंकि यह एक सुरक्षित लेनदार है। दूसरी बात यह कही गई कि बैंक के पास गिरवी रखी गई सम्पत्ति भागीदारों की सम्पत्ति थी, जबकि बिक्री कर का बकाया साझेदारी फर्म का था, जिसका मूल्यांकन एक कानूनी इकाई के रूप में किया गया था; कर की बकाया राशि की वसूली साझेदारी फर्म की सम्पत्तियों से की जा सकती है, ना कि व्यक्तिगत भागीदारों की सम्पत्तियों पर कार्यवाही करके। उक्त दोनों दलीलों को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। समझौता दर्ज करते समय और अपने निर्णय दिनांक 3.8.1992 द्वारा उसके संदर्भ में एक डिक्री पारित करते हुए उच्च न्यायालय ने उपरोक्त

खण्ड (7) और (8) को अवैध और राज्य के खिलाफ लागू करने योग्य नहीं होने के कारण बाहर कर दिया। तदनुसार, बैंक द्वारा दायर किए गए मामले में उच्च न्यायालय द्वारा निचली अदालत के निर्णय और डिक्री को निरस्त करने का आदेश दिया था। उच्च न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का ऑपरेटिव भाग इस प्रकार है:-

"हम पहले ही मान चुके हैं कि पहले प्रतिवादी-भागीदारों से राज्य को देय बिक्री कर बकाया को वादी के दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी इसलिए हम खण्ड (7) और (8) और अन्य शर्तों को छोड़कर, जो मुकदमे की सम्पत्तियों की बिक्री से बिक्री कर बकाया की वसूली के लिए राज्य के अधिमान्य दावों को प्रभावित करते हैं, और समझौते की शर्तों के अनुसार वादी के मुकदमों को डिक्री करती है, शर्त यह है कि प्रथम प्रतिवादी और उसके भागीदारों से बिक्री कर अधिनियम के तहत देय दण्ड सहित बिक्री कर बकाया, यदि कोई हो, तो वादी के दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी, और वादी को पहले निष्पादन के दौरान वसूल की गई राशि का भुगतान करना होगा। पहले प्रतिवादी और उसके भागीदारों से बिक्री कर अधिनियम के तहत बकाया बिक्री कर और अन्य राशियों के लिए राज्य को और उसके बाद वादी डिक्री

के तहत देय शेष राशि को समायोजित करने का अधिकारी है।

श्री के.आर.डी. कारन्थ तथा विद्वान महाधिवक्ता की दलीलों के आधार पर हम आगे निर्देश देते हैं कि हालांकि राज्य के पास अधिमान्य दावा है, वादी को इस शर्त पर राशि वसूल करने का अधिकार सौंपा गया है कि वसूल की गई राशि का भुगतान पहले बिक्री कर अधिनियम के तहत बिक्री कर के बकाया और जुर्माना, यदि कोई हो, के लिए किया जाएगा और फिर शेष राशि, यदि कोई हो, को डिक्री के तहत देय राशि में समायोजित किया जाएगा।

अपील स्वीकार की जाती है। विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द किया गया। वादी का वाद 25 लाख रुपये की धनराशि के लिए ऊपर निर्दिष्ट अपवादों और समझौतों की शर्तों के अनुसार डिक्री किया जाता है। आज तक रिसीवर द्वारा न्यायालय में जमा करवाई गई राशि का भुगतान वादी को किया जाएगा। मोचन के लिए आज से छः माह की अवधि तय की गई है। यदि प्रतिस्पर्धी उत्तरदाता डिक्रीटल राशि का भुगतान करने में विफल रहते हैं तो वादी छः माह की समाप्ति पर सम्पत्ति को तुरन्त बिक्री के लिए

लाएगा और आज से एक वर्ष की अवधि में निष्पादन पूरा करेगा। यदि प्रतिस्पर्धी उत्तरदाता पूर्वोक्त निर्धारित अवधि के भीतर डिफ़ॉल्ट राशि का भुगतान करते हैं, तो राज्य अधिनियम के तहत, मुकदमें की अनुसूची सम्पत्तियों की बिक्री से, अपने बिक्री कर बकाया को जुमाने के साथ, यदि कोई हो तो वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगा। जहाँ तक वादी और प्रतिस्पर्धी उत्तरदाताओं का प्रश्न है, उन्होंने समझौता कर लिया है और समझौते में वह सम्बंधित लागतों को वहन करने के लिए पूरी तरह सहमत हैं। जहाँ तक राज्य का प्रश्न है, वह दावे और इस अपील में उत्तरदाताओं में से एक है। विचारण न्यायालय ने पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करने का भी निर्देश दिया है। इसके अलावा, बैंक द्वारा दायर मुकदमें में वरीयता का अधिकार मिलने से राज्य को लाभ होता है। इन परिस्थितियों में, जहाँ तक राज्य का सम्बंध है, हम इस अपील में कोई शुल्क नहीं लगाने का आदेश देते हैं।"

बैंक ने उच्च न्यायालय के द्वारा पारित डिफ़ॉल्ट से व्यथित महसूस करते हुए इस न्यायालय में विशेष अनुमति द्वारा अपील की है कि वह किस हद तक मुकदमे की सम्पत्ति के खिलाफ आगे बढ़ने के राज्य के अधिकार को मान्यता देता है और वह भी बैंक के अधिकार को प्राथमिकता

देते हुए गिरवी रखी सम्पत्ति के विरुद्ध बकाया राशि की वसूली के लिए आगे बढ़े।

हमने बैंक के विद्वान अधिवक्ता और साझेदारी फर्म और उसके भागीदारों, यानि उधारकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है। हालांकि कर्नाटक राज्य की ओर से तामील के बावजूद भी कोई उपस्थित नहीं हुआ है।

विचार हेतु दो प्रश्न उठते हैं। सबसे पहले, क्या बिक्री कर बकाया की वसूली (क्राउन की ऋण राशि) को बैंक द्वारा गिरवी रखी गई उधारकर्ताओं की सम्पत्ति के खिलाफ कार्यवाही करने के अधिकार पर प्राथमिकता दी जाएगी। दूसरे, क्या कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के तहत साझेदारी फर्म के खिलाफ बिक्री कर का जो ऑकलन किया गया है, उसकी वसूली के लिए भागीदारों की सम्पत्ति के खिलाफ कार्यवाही की सकती है।

क्राउन ऋणों की प्राथमिकता या वरीयता का सामान्य कानून सिद्धान्त क्या है? हैल्सबरी, सम्पत्ति के सम्बंध में क्राउन के सामान्य अधिकारों से सम्बंधित है, बताता है कि जहाँ क्राउन का अधिकार और विषय का अधिकार एक ही समय में मिलते हैं, वहाँ क्राउन के अधिकार को सामान्य रूप से प्राथमिकता दी जाती है। नियम "डिटुर डिग्निआेरी" (इंग्लैण्ड का कानून, चौथा संस्करण, खण्ड 8 पैरा 1076 पेज 666). हरबर्ट ब्राउन का

कहना है - "न्याय और शासन दोनों एक साथ होते हैं - जहाँ राजा की उपाधि और किसी विषय की उपाधि एक जगह होती है, वहाँ राजा की उपाधि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।" इस मामले में डेटुर डिग्निओरी नियम है जहाँ राजा और किसी विषय की उपाधियाँ एक साथ आती हैं, राजा सम्पूर्ण को ग्रहण करता है जहाँ राजा की उपाधि और किसी विषय की उपाधि सहमत होती हैं या विवादित होती हैं, वहाँ राजा की उपाधि को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।" (विधिक सूत्र दसवाँ संस्करण, पीपी.35-36)। राज्य के ऋणों की प्राथमिकता के इस सामान्य सिद्धान्त को भारत के उच्च न्यायालयों द्वारा 1950 से पहले ब्रिटिश भारत में लागू होने के रूप में मान्यता दी गई है और इसलिए इस सिद्धान्त को संविधान के अनुच्छेद 372(1) के अर्थ के भीतर "लागू कानून" के रूप में माना गया है। चगला सी.जे. द्वारा इस विषय पर की गई प्रकाशमय चर्चा *बैंक ऑफ इण्डिया बनाम जॉन बोमन* एआईआर (1955) बोम्बे 305 में पाई जा सकती है। हम मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के *मनिकम चेट्टियार बनाम आयकर अधिकारी, मदुरई* (1938) एमएडी. 360 का निर्णय भी ले सकते हैं और दो न्यायिक आयुक्त के न्यायालय के *पिपल्स बैंक ऑफ नार्दन इण्डिया लि. बनाम सचिव, भारत राज्य*, एआईआर (1935) सिण्ड 232 तथा *वसनभाई टोपनदास बनाम राधाबाई तीरथदास व अन्य*, एआईआर (1933) सिण्ड 368 निर्णयों को गुणा किए बिना हम सीधे *मैसर्स बिल्डर्स सप्लाइ कॉर्पोरेशन बनाम यूनियन ऑफ*

इण्डिया, एआईआर (1965) एससी 1061 में संविधान पीठ के निर्णय पर आएंगे।

सरकारी ऋणों के प्राथमिकता के सिद्धान्त आवश्यकता और सार्वजनिक नीति के नियम पर आधारित है। राज्य ऋणों की प्राथमिकता के दावे का मूल औचित्य इस सर्वमान्य सिद्धान्त पर आधारित है कि राज्य कराधान द्वारा धन जुटाने के लिए प्रतिबद्ध है क्योंकि जब तक राज्य को पर्याप्त राजस्व प्राप्त नहीं होगा, वह एक सम्प्रभु सरकार के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम नहीं होगा। यह आवश्यक है कि एक सम्प्रभु के रूप में राज्य अपने प्राथमिक सरकारी कार्यों को करने में सक्षम हो और ऐसे कार्यों को कुशलतापूर्वक करने में सक्षम होने के लिए उसके पास आवश्यक धन होना चाहिए और यह विचार राज्य के अपने कर बकाया के सम्बंध में प्राथमिकता का दावा करने के अधिकार को स्वीकार करने की आवश्यकता और बुद्धिमत्ता पर बल देता है। (देखें मैसर्स बिल्डर सप्लाई कोर्पोरेशन सुप्रीम)। इसी मामले में संविधान पीठ ने न्यायिक राय की आम सहमति पर गौर किया है कि राज्य को देय कर की बकाया राशि निजी ऋणों पर प्राथमिकता का दावा कर सकती है और सामान्य कानून का यह नियम भारत के संविधान के अनुच्छेद 372 (1) के भीतर प्रासंगिक समय पर ब्रिटिश भारत के क्षेत्र में लागू कानून के बराबर है और इसलिए इसके बाद भी लागू रहेगा। जिस सिद्धान्त पर यह नियम लागू किया गया है, उसी सिद्धान्त पर प्राथमिकता केवल ऐसे ऋणों पर उपलब्ध होगी, जो राज्य के

अनिवार्य वसूली की सम्प्रभु शक्ति के संदर्भ में क्राउन के विषयों तक किया गया है और वाणिज्यिक सेवाओं और दायित्वों के लिए शुल्क या वाणिज्यिक लेन-देन के अनुसार राज्य के लिए विषयों द्वारा किए गए दायित्वों पर विस्तारित नहीं होगा। उपलब्ध न्यायिक घोषणाओं की समीक्षा करने के बाद न्यायमूर्ति ने कानून को निम्न प्रकार सारांशित किया है:-

1. न्यायिक राय में इस बात पर आम सहमति है कि राज्य को देय कर का बकाया निजी ऋणों पर प्राथमिकता का दावा कर सकता है।

2. क्राउन ऋणों की प्राथमिकता के बारे में सामान्य कानून सिद्धान्त, जिसे 1950 से पहले भारतीय उच्च न्यायालय द्वारा मान्यता दी गई थी, अनुच्छेद 372 (1) के अर्थ के भीतर "लागू कानून" का गठन करता है और अभी भी लागू है।

3. राज्य ऋणों की प्राथमिकता के दावे का मूल औचित्य राज्य को अपने बकाया कर के सम्बंध में प्राथमिकता प्राप्त करने का अधिकार देने की आवश्यकता और बुद्धिमत्ता का नियम है।

4. यह सिद्धान्त राज्य को देय ऋणों के सम्बंध में लागू नहीं हो सकता है। यदि वे वाणिज्यिक गतिविधियों के सम्बंध में नागरिकों द्वारा अनुबंधित हैं, जो राज्य द्वारा सामाजिक-आर्थिक भलाई प्राप्त करने के लिए किए जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में जहाँ कल्याणकारी राज्य ऐसे वाणिज्यिक क्षेत्रों में प्रवेश करता है, जिन्हें राज्य के बुनियादी सरकारी कार्यों का एक

अनिवार्य और अभिन्न अंग नहीं माना जा सकता है और ऐसीवाणिज्यिक गतिविधियों से उत्पन्न होने वाले अपने देनदारों से ऋण की वसूली करना चाहता है, तो प्राथमिकता के सिद्धान्त की प्रयोजिता विचार के लिए खुली रहेगी।

संविधान पीठ के निर्णय का पालन *औरंगाबाद जिलाधीश बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया, एआईआर (1967) एससी 1831* तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा किया गया है।

हालांकि अन्य लेनदारों के मुकाबले ऋण की वसूली का क्राउन का अधिमान्य अधिकार सामान्य या असुरक्षित लेनदारों तक ही सीमित है। इंग्लैण्ड का सामान्य कानून या समानता और अच्छे विवेक के सिद्धान्त (जैसा की भारत में लागू है) क्राउन (राजशाही) को अपने ऋणों की वसूली के लिए किसी गिरवीदार या माल के गिरवीदार या सुरक्षित लेनदार पर अधिमान्य अधिकार नहीं देता है। यह केवल ऐसे मामलों में जहाँ क्राउन (राजशाही) का अधिकार और विषय का अधिकार एक ही समय में मिलते हैं, वहाँ क्राउन (राजशाही) को सामान्य रूप से प्राथमिकता दी जाती है। जहाँ राजा का अधिकार शुरू होने से पहले विषय का अधिकार पूर्ण और परिपूर्ण है, वहाँ यह नियम लागू नहीं होता है क्योंकि ऐसा कोई समय नहीं है, जब दोनों अधिकारों में टकराव हो और ना ही यह प्रश्न हो सकता है कि दोनों में से कौनसा उस मामले में प्रबल होना चाहिए। ऐसे मामलों में जहाँ

एक विषय पहले से ही प्रबल हो गया है। *जाइल्स बनाम गोवर*, [1832] 131 ईआर 563, में यह माना गया है कि माल के गिरवीदार पर क्राउन (राजशाही) की कोई प्राथमिकता नहीं है। *बैंक ऑफ बिहार बनाम बिहार राज्य व अन्य*, एआईआर (1971) एससी 1210 में इस सिद्धान्त को इस न्यायालय द्वारा यह मान्यता दी गई है कि गिरवीदार, जिसने प्रतिभूति पर गिरवी रखने वाले के पक्ष में पैसा दिया है, गिरवी रखने वाले के दावे को पूरी तरह से संतुष्ट किए बिना गिरवी रखने वाले के अन्य लेनदारों को धन उपलब्ध करवाकर माल की वैध जब्ती से भी इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है। रासबिहारी घोष ने बंधक कानून (टी.एल.एल. साँतवा संस्करण) पे. 386 में कहा है कि ऐसा लगता है कि भारत में सरकारी ऋण पूर्व सुरक्षित ऋण पर प्राथमिकता का अधिकार नहीं है।

उपरोक्त कानून की स्थिति होने के कारण उच्च न्यायालय ने हालांकि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 के अध्याय XVI में निहित कुछ प्रावधानों के साथ-साथ कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957 की धारा 13 और 15 में निहित प्रावधानों पर भी भरोसा किया है। अपीलकर्ता बैंक के पक्ष में बंधक द्वारा सुरक्षित ऋण पर भी बिक्री कर की बकाया राशि को प्राथमिकता दी जाएगी। हम प्रासंगिक कानूनी प्रावधानों पर गौर करेंगे।

कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम, 1964 के अध्याय XVI का शीर्षक-"भूमि राजस्व और अन्य सार्वजनिक माँग की वसूली है" धारा 158,

190 और 2 (उसके प्रासंगिक भाग) को यहाँ निकाला और पुनः निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है:-

"158. राज्य सरकार का अन्य सभी पर वरीयता होने का दावा।

(1) इस अध्याय के तहत वसूली योग्य किसी भी धन के लिए राज्य सरकार के दावे को किसी भी अन्य ऋण, माँग या दावे पर प्राथमिकता दी जाएगी, चाहे वह बंधक, निर्णय डिक्री, निष्पादन या कुर्की के सम्बंध में हो, या अन्यथा चाहे जो भी हो किसी भूमि या उसके धारक के विरुद्ध।

(2) सभी मामलों में, चालू राजस्व के लिए कृषि प्रयोजनों के लिए भूमि का भू राजस्व यदि अन्यथा निर्वहन नहीं किया गया है, ऐसी भूमि की फसल से, अन्य सभी दावों की तुलना में प्राथमिकता में वसूली योग्य होगा।

(2) परिभाषाएँ - इस अधिनियम में जब तक संदर्भ में अन्यथा अपेक्षित न हो-

xxx xxx xxx

(14) "भूमि" में भूमि से उत्पन्न होने वाले लाभ, और पृथ्वी से जुड़ी वस्तुएँ, या स्थायी रूप से पृथ्वी से जुड़ी किसी वस्तु से जुड़े लाभ, और

गांवों या अन्य परिभाषित क्षेत्रों के राजस्व या किराए में हिस्सेदारी या शुल्क शामिल हैं।

190.अन्य सार्वजनिक माँगों की वसूली.- इस अधिनियम के तहत निम्नलिखित धन की वसूली भू राजस्व के बकाया के समान ही की जा सकती है, अर्थात् :-

(a) xxx xxx xxx

(b) xxx xxx xxx

(c) इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा घोषित सभी राशियाँ भू राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य होंगी।

(जोर दिया गया)

कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957 की धारा 13 भी प्रासंगिक है। उप धारा (1) तथा (3) जहाँ तक (प्रासंगिक सीमा तक) को यहाँ निकाला और पुनः प्रस्तुत किया गया है :-

"धारा 13. कर का भुगतान एवं वसूली. - [(1) इस अधिनियम के तहत कर [या कोई अन्य देय राशि] का भुगतान इस प्रकार [ऐसी किश्तों में, ऐसी शर्तों के अधीन, ऐसे ब्याज के भुगतान पर] तथा ऐसे समय के भीतर, जो निर्धारित किया गया हो, किया जाएगा।]"

XXX XXX XXX

XXX XXX XXX

(3) इस अधिनियम के तहत किसी डीलर या किसी अन्य व्यक्ति से कोई आँकलित कर, या कोई अन्य देय राशि संग्रह के लिए किसी भी अन्य तरीके पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना वसूल की जा सकती है -

XXX XXX XXX

XXX XXX XXX

(a) मानो यह भू राजस्व का बकाया हो, य'

XXX XXX XXX

XXX XXX XXX (जोर दिया गया)

यह अधिनियम 1.10.1957 को लागू हुआ था। 18.11.1983 से निम्नलिखित उप-धारा (2-A) को 1983 के अधिनियम संख्या 23 में संशोधन द्वारा कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम 1957 की धारा 15 के मुख्य भाग में शामिल किया गया था और उसी दिन से लागू किया गया था:-

"(2-A) जहाँ कोई भी फर्म इस अधिनियम के तहत किसी भी कर या जुर्माना या किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, तो फर्म और प्रत्येक भागीदार इस तरह

के भुगतान के लिए संयुक्त रूप से और अलग,अलग
उत्तरदायी होंगे।"

हमने देखा है कि क्राउन ऋणों की प्राथमिकता का सामान्य कानून सिद्धान्त सुरक्षित निजी ऋणों पर क्राउन ऋणों को प्राथमिकता प्रदान करने तक विस्तारित नहीं होगा। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह कहना रहा है कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम के तहत और कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम के तहत भी बिक्री कर का बकाया भूमि राजस्व का बकाया नहीं बनता है; उन्होंने केवल भू राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य घोषित किया गया है। *बिल्डर्स सप्लाई कॉर्पोरेशन* मामले (सुप्रा), के पैरा 28, में इस न्यायालय की टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने कहा कि अपीलकर्ता एक सुरक्षित लेनदार होने के नाते बिक्री कर के बकाया को अपीलकर्ता के अधिकारों पर प्राथमिकता नहीं दे सकता। यह सच है कि संविधान पीठ ने *बिल्डर्स सप्लाई कॉर्पोरेशन* मामले (सुप्रा), में आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 46(2) के संदर्भ में कहा है कि यह प्रावधान क्राउन ऋणों की प्राथमिकता के सिद्धान्त से बिल्कुल भी सम्बंधित नहीं है; यह केवल एक निर्धारिती से देय कर के बकाया के वसूली का प्रावधान करता है, जैसे कि वह भू राजस्व का बकाया हो, जिसे कर के बकाया को भूमि के राजस्व के बकाया में परिवर्तित करने के लिए नहीं कहा जा सकता है। विद्वान वकील द्वारा दी गई दलील में कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 158(1) के प्रभाव को ध्यान में

रखना शामिल नहीं है, जिसमें विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि अध्याय XVI के प्रावधानों के तहत वसूली योग्य किसी भी धन के लिए राज्य सरकार के दावे का किसी भी अन्य ऋण, माँग या दावे पर पूर्व प्रभाव होगा, जिसमें बंधक भी शामिल है। कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 158 न केवल ऋण की वसूली के लिए राज्य के प्राथमिकता के सिद्धान्त को वैधानिक मान्यता देती है बल्कि बंधक, ऋण, बिक्री, निष्पादन या कुर्की और इसी तरह के विषय बनाने वाले निजी ऋणों पर भी इसकी प्रयोज्यता का विस्तार करती है। *औरंगाबाद जिलाधीश बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया* (सुप्रा) के मामले में, हैदराबाद भूमि राजस्व अधिनियम और हैदराबाद सामान्य बिक्री कर अधिनियम के प्रावधान इस न्यायालय के समक्ष विचार हेतु सामने आए थे। इस न्यायालय ने बैंक के पक्ष में सुरक्षित ऋण पर बिक्री कर की बकाया राशि को प्रधानता देने से इन्कार कर दिया था। निर्णय में उद्धृत प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के अवलोकन से पता चलता है कि कर्नाटक भूमि राजस्व अधिनियम की धारा 158 में निहित कोई भी प्रावधान *औरंगाबाद जिलाधीश बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इण्डिया* में इस न्यायालय के विचाराधीन किसी भी स्थानीय अधिनियम में नहीं पाए गए। धारा 190 का प्रभाव भूमि राजस्व के बकाया की वसूली की प्रक्रिया को बिक्री कर के बकाया की वसूली के लिए लागू करना है। धारा 158 का प्रभाव अध्याय XVI के तहत वसूली योग्य सभी ऋणों को प्राथमिकता देना है, जिसमें बिक्री कर शामिल होगा।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने यह निवेदन किया है कि कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2-A) को पूर्वव्यापी संचालन नहीं दिया जा सकता है, यह निवेदन गलत है। किसी कानून को पिछली तारीख से शुरू करने के लिए बनाया जा सकता है, यानि उसके अधिनियमन की तारीख से पिछली तारीख से। किसी विषय पर पिछले काल को नियंत्रित करने वाला कानून बनाना पूर्वव्यापीता है। विधायिका ऐसा कानून बनाने में सक्षम है। सामान्य नियम यह है कि कोई विधायी अधिनियम उसके लागू होने पर ही लागू होता है। पूर्वव्यापीता का अनुमान जब तक नहीं लगाया जाना चाहिए, जब तक कि यह विशेष रूप से वास्तविक अधिकारों एवं दायित्वों से सम्बंधित कानून में व्यक्त या आवश्यक रूप से निहित न हो। यह कहना गलत होगा कि कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2A) को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया जा रहा है। भागीदारों को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी बनाकर फर्म के विरुद्ध निर्धारित कर का भुगतान करने का दायित्व निर्धारित करना संशोधन को पूर्वव्यापी संचालन देने के समान नहीं है। वैधानिक व्याख्या के सिद्धान्तों में (जस्टिस जी.पी. सिंह द्वारा, साँतवा संस्करण, 1999, पृष्ठ 369 पर) यह कहा गया है:-

"पूर्वव्यापी निर्माण के विरुद्ध नियम केवल एक कानून पर लागू नहीं होता है "क्योंकि इसकी कार्यवाही के लिए आवश्यक शर्तों का एक हिस्सा इसके पारित होने के पूर्ववती

समय से लिया जाता है।" यदि ऐसा नहीं होता, तो प्रत्येक कानून को केवल लागू माना जाएगा, व्यक्तियों का जन्म होता है और चीजें इसके संचालन के बाद अस्तित्व में आती हैं और नियम के परिणाम के तहत अधिकांश कानून लगभग रद्द हो सकते हैं, इसलिए एक संशोधन अधिनियम केवल इसलिए पूर्वव्यापी नहीं है क्योंकि वह उन लोगों पर भी लागू होता है, जिन पर पूर्व संशोधित अधिनियम लागू था। यदि संशोधित अधिनियम अपने संशोधन की तारीख से प्रभावी है, न कि किसी पूर्ववती तारीख से।"

इसलिए, कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2-A) को पूर्वव्यापी प्रभाव देने का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह भावी है, हालांकि इससे वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

उच्च न्यायालय ने फर्म के कर दायित्व को पूरा करने के लिए भागीदारों को उत्तरदायी व्यक्तियों के रूप में रखने के लिए साझेदारी अधिनियम, 1932 की धारा 25 पर भरोसा किया है। धारा 25 में प्रावधान है कि प्रत्येक भागीदार अन्य सभी भागीदारों के साथ संयुक्त रूप से भागीदार रहते हुए किए गए फर्म के सभी कार्यों के लिए अलग-अलग रूप से उत्तरदायी है। एक फर्म कानूनी इकाई नहीं है। यह सभी भागीदारों के लिए एक सामूहिक या सारगर्भित नाम मात्र है। दूसरे शब्दों में, एक फर्म

का अपने भागीदारों से दूर कोई अस्तित्व नहीं है। किसी फर्म के नाम पर किसी फर्म के पक्ष या विपक्ष में डिक्री का प्रभाव भागीदारों के पक्ष या विपक्ष में डिक्री के समान ही होता है। जबकि फर्म एक दायित्व वहन कर रही है, यह माना जा सकता है कि सभी भागीदार उस देयता को वहन कर रहे थे और इसीलिए भागीदार फर्म के सभी कार्यों के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी रहते हैं। इस सिद्धान्त को ऐसीस्थितियों तक विस्तारित या विस्तारित नहीं किया जा सकता, जहाँ फर्म को एक व्यक्ति माना जाता है और कुछ उद्देश्यों के लिए एक कानूनी इकाई माना जाता है। कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, जिससे हम सम्बंधित हैं, फर्म को एक डीलर के रूप में बिक्री कर अधिनियम के तहत मूल्यांकन के सीमित उद्देश्यों के लिए एक व्यक्ति के रूप में मानकर कानूनी दर्जा भी देता है। इसलिए, यह *बिक्री कर आयुक्त, एम.पी. बनाम राधा कृष्णन व अन्य*, एआईआर (1979) एससी 1588 में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा यह निर्धारित किया गया कि:-

".....साझेदारी में एक फर्म और एक हिन्दू अविभाजित परिवार को कानूनी इकाई सम्बंधों के रूप में मान्यता दी जाती है और ऐसी कार्यवाही केवल फर्म और हिन्दू अविभाजित परिवार के खिलाफ भी की जा सकती है, जैसा भी मामला हो। न तो फर्म के भागीदार और न ही हिन्दू अविभाजित परिवार के सदस्य फर्म या अविभाजित

हिन्दू परिवार के खिलाफ निर्धारित कर के लिए उत्तरदायी होंगे।"

हालांकि, यदि इसके विपरीत कोई वैधानिक प्रावधान हो, तो इस सिद्धान्त की कोई प्रयोज्यता नहीं होगी। *राधा कृष्णन व अन्य और अन्य* (सुप्रा) के मामले में पैरा 7 में ही इस न्यायालय ने कहा:-

"यह ध्यान दिया जा सकता है कि आयकर अधिनियम की धारा 276 (d) में विशेष रूप से "फर्म" शब्द की परिभाषा के भीतर सभी भागीदार शामिल हैं और एक कम्पनी में निदेशक शामिल हैं। बोम्बे बिक्री कर अधिनियम, 1959 की धारा 18 में विशेष रूप से यह प्रावधान किया गया है कि जहाँ कोई फर्म अधिनियम के तहत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, फर्म और फर्म के प्रत्येक भागीदार ऐसे भुगतान के लिए संयुक्त रूप से और अलग-अलग उत्तरदायी होंगे। बोम्बे अधिनियम की धारा 18 में पाए गए विशिष्ट प्रावधान के अभाव में फर्म के भागीदारों को फर्म के निर्धारित कर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।"

जैसा कि ऊपर बताया गया है बोम्बे बिक्री कर अधिनियम की धारा 18 में शामिल प्रावधान के समान एक प्रावधान कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम में शामिल किया गया है और यही कारण है कि हमारे सामने

आए मामले में उधारकर्ता फर्म के भागीदार इस न्यायालय द्वारा *राधा कृष्णन व अन्य (सुप्रा)* के मामले में इस न्यायालय के द्वारा निर्धारित कानून के पीछे आश्रय नहीं ले सकते हैं। यहाँ हम *तृतीय आयकर अधिकारी व अन्य बनाम अरूणगिरी चेट्टियार*, (1996) 220 आईटीआर 232 एससी के मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का भी उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें धारा 188 A आयकर अधिनियम, 1971 के प्रावधानों का संज्ञान लिया गया है। धारा 188 A एक भागीदार और उसके विधिक प्रतिनिधियों को उस वर्ष के लिए देय किसी भी कर या जुर्माना या राशि का भुगतान करने के लिए फर्म के साथ संयुक्त रूप से और अलग-अलग रूप से उत्तरदायी घोषित करता है, जिसमें वह भागीदार था। यह देखा गया है कि धारा 188 A स्पष्ट रूप से वह प्रदान करता है, जो अब तक अन्तर्निहित था। इस मामले में भागीदारों को कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम, 1957 की धारा 15(2A) के कारण उत्तरदायी ठहराया जा रहा है।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील का यह निवेदन सही है कि जिस दिन कर्नाटक राज्य ने बैंक के पास गिरवी रखी गई फर्म की साझेदारी की सम्पत्ति को कुर्क करने और बेचने की कार्यवाही की, वह इस न्यायालय द्वारा *बिक्री कर आयुक्त, एम.पी. व अन्य बनाम राधाकृष्णन व अन्य (सुप्रा)* में निर्धारित कानून को देखते हुए बैंक की प्रतिभूति को विफल करते हुए वह फर्म द्वारा देय बिक्री कर बकाया के लिए बिक्री आय को विनियोजित

नहीं कर सकता था। हालांकि, फिर भी मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में अपीलार्थी बैंक को कोई राहत नहीं दी जा सकती है। कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की धारा 15 (2A) 18.12.1983 को लागू हुई थी जबकि बैंक के पक्ष में डिक्री 3.8.1992 को पारित की गई, जो अभी तक निष्पादित नहीं हुई है। अपीलकर्ता बैंक का दावा अभी भी बकाया है। भले ही हम राज्य द्वारा की गई बिक्री को रद्द कर देते हैं तो यह केवल बिक्री कर के बकाया के बकाया को पुनर्जिवित करेगा, जिसमें आगे ब्याज और जुर्माना जोड़ना होगा। कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम की संशोधित धारा 15 (2-A) लागू होगी। राज्य को अपीलार्थी बैंक के अधिकारों पर अपने बकाया की वसूली करने का अधिमान्य अधिकार होगा और भागीदारों की सम्पत्ति के खिलाफ भी कार्यवाही की जाएगी इसलिए अपील को अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जो केवल विवाद को और जटिल बनाएगा।

इसलिए उपरोक्त कारणों से, मामले के तथ्य एवं परिस्थितियों में लागत के सम्बंध में बिना किसी आदेश के अपील खारिज की जाती है।

अपील खारिज।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी रमाकान्त शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।